

वावस्ता

(ग़ज़ले / ऩज़में)

वाक्स्ता

(ग़ज़लें / ऩज़में)

पवन कुमार



प्रकाशन संस्थान

नयी दिल्ली-110002

प्रकाशक
प्रकाशन संस्थान
4268-B/3, अंसारी रोड, दरियागंज
नयी दिल्ली-110 002

© पवन कुमार
मूल्य : 250.00 रुपये
प्रथम संस्करण : सन् 2012
द्वितीय संस्करण : सन् 2016
ISBN:978-81-7714-432-1
आवरण : डॉ. लाल रत्नाकर
VAWASTA by Pawan Kumar

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032
मुद्रक : बी. के. ऑफसेट, दिल्ली-110032

इशिका, अवन्तिका, नन्दिनी
के लिए



कभी इक मोज़िज़ा ये भी हमारे बीच मुम्किन है
अदूरे ख़्वाब हों मेरे तिरी आँखों से वाबस्ता





फ़ेहरिस्त

अहसासों की आवाज़ है 'वाबस्ता'... : शीन काफ़ निजाम	11
बारगाहे-ग़ज़ल का एक ख़िदमतगार : अक्रील नोमानी	15
इब्तिदा : पवन कुमार	17

ग़ज़ल

उतरा है खुदसरी पे वो कच्चा मकान अब	25
कुछ लतीफ़ों को सुनते सुनाते हुए	26
हम तुम हैं आधी रात है और माहे-नीम है	27
सिर्फ ज़रा सी ज़िद की खातिर अपनी जाँ से गुज़र गए	28
जहां हमेशा समंदर ने मेहरबानी की	29
वो अक्सर मेरे सब्रो-ज़ब्त को यूँ आज़माते हैं	30
तुम्हें पाने की धुन इस दिल को यूँ अक्सर सताती है	31
दिल में कोई खलिश छुपाये हैं	32
ज़रा सी चोट को महसूस करके टूट जाते हैं	33
अजब गुलशन का मंज़र हो गया है	34
सभी को है ये धोका हम पले हैं शादमानी में	35
कभी तो है कभी गोया नहीं है	36

कहने को इंसान बहुत हैं	37
किसकी कहें, हालात से अपने कौन यहाँ बेज़ार नहीं	38
अब्बा के बाद घर की बदली हुई हवा है	39
हर इक उम्मीद कल पर टल रही है	40
मुम्किन है कि लहजे का मज़ा तुमको भी आ जाए	41
कोई भी तज़िकरा या गुफ्तगू हो	42
यूँ तो हर पल इन्हें भिगोना ठीक नहीं	43
ज़मीं पर किस क़दर पहरे हुए हैं	44
इश्क में लज्जाते मिला देखूँ	45
कहीं पर खुशबूँ बिखरीं, कहीं तरतीब उजालों की	46
वो कभी गुल कभी ख़ार होते रहे	47
किस किस तरह से दोस्तो बीती है ज़िन्दगी	49
रात दिन अपने घर में रहता है	50
हर चेहरे की यह तहरीर	51
तुमसे मिलने की आस बाक़ी है	52
सांसों में लोबान जलाना आखिर क्यों	53
आखिर तज़ाद ज़िन्दगी में यूँ भी आ गए	54
तेरी ख़ातिर खुद को मिटा के देख लिया	55
मिरी तन्हाई क्यों अपनी नहीं हैं	56
गुज़ारी ज़िन्दगी हमने भी अपनी इस क़रीने से	57
समन्दर सामने और तिश्नगी है	58

मैं हूँ मुश्किल में, याद करते ही	60
चुनी है राह जो काँटो भरी है	61
ये कसक दिल में रह-रह के उठती रही	62
ज़िंदगी में इक अजब ठहराव सा है	63
बेबस थे दिन तो सहमी हुई रात क्या कहें	64
“हसरतें दम तोड़ती है यास की आग़ोश में	65
ख़ूबसूरत से कुछ गुनाहों में	66
तेरी नज़रों में तो सहरा हुआ है	67
मंज़र भी आज देखिए नादिर हुआ जनाब	68
यक तरफ़ा फैसला मुझे मंजूर हो गया	69
मुंतज़र सी रात थी, थक हार के अब सो गई	70
रेज़ा रेज़ा ख़्वाब हो गये	71
हमारे शहर में हर अजनबी, इक हमज़बां चाहे	72
यूँ भी हम अपनी हर इक रात बसर करते हैं	73
पकती उम्रों को ये एहसास दिलाने होंगे	74

नज़रें

क्या यही वक्त है घर आने का	77
फिर भी कितना अनजान हूँ तुमसे	79
रिश्ते	80
अब के बरस	81
कविता, ग़ज़ल और नज़म	83



दरिया	85
जादू	86
ईशी के लिए	87
एक लम्हा	88
रात	89
आसमां	90
अमानत	92
यादें	93
नक्श कितने जुदा हैं...	95
उसे बदलना ही था	97
अरबी आयतें और इशी	99
मसूरी	101
हाशिया	103
ख़्वाब	104
लम्हों की तलाश	105
तुम्हारी तरह	106
दर्द कौन समझेगा	108
तहरीरें	110
समन्दर	111
ख़त	112
वक्त पर...	113
झतउ	115



अहसासों की आवाज़ है 'वाबस्ता'...

बीसवीं सदी में, हिन्दुस्तानी ज़बानों में, ग़ज़ल को बड़ी मकबूलियत हासिल हुई, और तो और उर्दू को म्लेच्छ भाषा कहने वाले संस्कृत भाषी भी ग़ज़ल को गले लगाने लगे। उर्दू ने ग़ज़ल फ़ारसी से ली लेकिन हिन्दुस्तानी ज़बानों ने इसे उर्दू से हासिल किया, और इसे उस वक्त अपनाया जब उर्दू में, दबी ज़बान से ही सही, ग़ज़ल की सृजनात्मक सम्भावनाओं की समाप्ति की बातें होने लगी थीं। उर्दू में ग़ज़ल का विरोध तो 'हाली' से ही शुरू हो गया था लेकिन अ़ज़मत उल्लाह खां और बाद में तरक्कीपसन्द तहरीक के लोगों ने ग़ज़ल को सामंतवादी युग की यादगार मान कर ख़ारिज कर देना चाहा। आलोचना की उंगली पकड़ कर चलने वाली रचना के इस काल में भी मजरूह 'सुल्तानपुरी', 'फैज़', जानिसार 'अख्तर', गुलाम रब्बानी 'ताबा' बगैरह ने ग़ज़ल की अहमियत से इंकार नहीं किया और उम्दा ग़ज़लें कहते रहे। 'हाली' से लेकर बाद के प्रगतिशील आन्दोलन तक ग़ज़ल का विरोध इसकी विषयवस्तु ही को लेकर हुआ और यह बात नज़रअंदाज कर दी गई कि ग़ज़लें कहने की कला है।

ऐसा कहना तो अनकहा हो। जैसे फैज़ का यह शेर—

वो बात सारे फ़साने में जिसका ज़िक्र न था
वो बात उनको बहुत नागवार गुज़री है

यानी नागवार गुज़रने वाली बात का तो कहीं ज़िक्र ही नहीं था।



सच्ची बात यह है कि शेरी-सिन्ह (काव्य रूप) का तअयुन (निर्धारण) मौजूद (विषय) से नहीं उसके बरते जाने से होता है। हम सबको मालूम है कि शाइरी की आखिरी तारीफ़ (परिभाषा) मुमकिन नहीं। इसके बावजूद यह तो कहा जा सकता है कि अहसास को अल्फाज़ देना शाइरी है।

पवन कुमार की ग़ज़लें पढ़ कर यह कहा जा सकता है कि उन्होंने अपने अहसास को सलीके से अल्फाज़ देने की कोशिश की है। उन्होंने लिखा है कि उनकी शब्द-यात्रा संगीत से शुरू होती है। दूसरे लफ़ज़ों में उनका शेरीज़ौक़ (काव्य रूचि) समाई (श्रव्य) है। मुशाअरों के मक्कबूल (प्रसिद्ध) शाइरों से मुतास्सिर (प्रभावित) हुए। उनकी सोहबत से फैज़याब (लाभान्वित) हुए और खुले-दिल से उन्होंने इसका एतिराफ़ (स्वीकरण) भी किया है। अहसान माना है उनका, जिनसे उनके शेरी-ज़ौक़ को फैज़ (लाभ) पहुँचा है। यह इस बात की दलील है कि वे एक शेरीफ़ इंसान हैं।

समाई और बसरी (श्रव्य तथा पठ्य) शाइरी में एक फ़र्क यह भी है कि समाई (श्रव्य) शाइरी में जहां फ़र्द (व्यक्ति) भीड़ से बात करता है वहां बसरी शायरी में फ़र्द-फर्द से, व्यक्ति-व्यक्ति से बात करता है। मैं नहीं जानता कि पवन कुमार भीड़ से कितनी बात करते हैं। करते भी हैं कि नहीं? लेकिन वे ‘वाबस्ता’ के वसीले से फ़र्द से फ़र्दन-फर्दन (अलग-अलग) बात करना चाहते हैं। मैं उनके इस इरादे का इस्तकबाल (स्वागत) करता हूँ।

ग़ज़ल में कितने ही तज्ज्बे हो जायें वो मिज़ाजन (स्वभावतः), फ़न्नी एतिबार से, रिवायत पसन्द (परम्परा पसन्द) है। उर्दू ग़ज़ल का यह मिज़ाज भारतीय संस्कृति से बना है और पवन कुमार ने इसे जान लिया है। वे कहते हैं—



दरो-दीवार से भी हैं मरासिम
मगर बुनियाद से वाबस्तगी है

अगर बुनियाद से वाबस्तगी रखने वाला, परम्परा और रुढ़ि के कँज़ को ध्यान में रखे तो दरो-दीवार के साथ-साथ बुनियाद में भी मुनासिब तब्दीली कर सकता है। हर बड़ा शाइर यह काम कर दिखाता है और हर अच्छा शाइर ऐसा करना चाहता है। पवन कुमार ऐसा शायद इसलिए भी कर पायेंगे क्योंकि उनका कहना है कि—

वक्रारो-इज्जतो-शोहरत की मंज़िल
मुझे पाना है पर जल्दी नहीं है

शायरी वैसे भी जल्दी का काम नहीं है। यह तो बेइत्मीनान आदमी का इत्मीनान है। सब्र का सफ़र है।

इंसानी जमाने को, किसी ने दो हिस्सों में बांटा है। एक जंग का ज़माना और दूसरा जंग की तैयारी का ज़माना। इंसान की बदनसीबी यह नहीं है कि वह इन ज़मानों में जीने के लिए मजबूर है। उसकी बदबूती यह है कि उसे अम्न के लिए भी जंग करनी पड़ती है। अस्ता (हथियार) अम्न (शांति) का मुहाफ़िज (रक्षक) है। वे कहते हैं—

अम्न वालों की इस क़वायद पर
सुनते हैं “बुद्ध मुस्कुराये हैं”

वे भी यह मानते हैं कि धूप और हवा का न मुल्क होता है न मजहब

क्या सरहदों के मानी क्या दुश्मनी का मतलब
जब दोनों ओर यक्सां बहती हुई हवा है



दोस्तनुमा दुश्मनों के ज़िक्र से उर्दू शायरी में अनेक शेर हैं। पवनकुमार इसे अलग तरह से देखते हैं।

अजब ये दौर हैं लगते हैं दुश्मन दोस्तों जैसे
कि लहरें भी मुसलसल रब्त रखती हैं सफ़ीने से

मौजों का सफ़ीने से रब्त (संबंध) दोस्ताना है मगर उसे ग़र्क भी मौजें ही करती हैं। ऐसे मौजूद (विषय) उन्हें अज़ीज़ हैं एक और शेर देखिए—

बस इस धुन में कि गहरा हो तअल्लुक
हमारे फ़ासले गहरे हुए हैं

पवन कुमार के यहां अपने अहूद की आवाज़ों की बाज़ग़श्त भी है लेकिन इसके बगैर ग़ज़ल में अपनी आवाज़ पाना मुस्किन नहीं। जिस शाइर के यहां ऐसे शेर मौजूद हों—

ख़्वाब गिरते ही दूट जाते हैं
कैसी फिसलन है तेरी राहों में

●

उदास रात की चौखट पे मुंतज़िर आँखों
हमारे नाम मुहब्बत ने ये निशानी की

उससे अगर उम्मीदें वाबस्ता की जाएं तो ग़लत नहीं होगा।

कल्लों की गली
जोधपुर

—शीन काफ़ निज़ाम



बारगाहे-ग़ज़ल का एक खिदमतगार

शायरी का सदियों पुराना सिलसिला कभी का ये साबित कर चुका है कि यह मशग़ला मामूली लोगों का नहीं बल्कि उन गैर मामूली इंसानों का मिज़ाज है जो इसमें डूबकर चाहे मंज़िल बन गये हों या मुसाफ़िर कहलाते हों, इन्सानी समाज में दूर से पहचाने जाते हैं। एहसास में शिद्दत, ज़्ज़बात में पाकीज़गी, ज़हन में उजाला, औँखों में ख़बाबों का सरमाया और साथ में अल्फ़ाज़ो-मआनी की कायनात और एक अज़ीम मक्रसदे-हयात हो तो ऐसे शख्स को शायर कहलाने का पूरा हक्क है। अब तक की शायराना ज़िंदगी में बहुत से लोग मिले। किसी से बहैसियत शख्स राब्ता रहा तो किसी से बहैसियत शायर वास्ता रहा लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो दोनों हैसियतों से दिल के करीब रहे। इन्हीं में एक हैं ‘पवन कुमार’।

एक आला सरकारी मंसब पर फ़ाइज़ इस हाकिम को जब करीब जाकर देखने का मौक़ा मिला तो बारगाहे ग़ज़ल के एक हस्सास ख़ादिम से मुलाक़ात हो गयी। सिलसिला गुफ़तगू से जुस्तजू तक पहुँचा तो मज़ीद इंकिशाफ़ हुआ कि पवन कुमार जी के दिल में भी फ़िक्रों ख़याल के बो बेशुमार जुगनू पोशीदा हैं जो उनके ज़हन की परवाज़ के साथ सफ़र करना चाहते हैं और फ़िक्र के इन जुगनुओं को जब-जब हमपरवाज़ी का मौक़ा मिला है तो उन्होंने बिला झिझक ग़ज़ल के दामन में सितारे टाँकने की कामयाब कौशिश की है।

पवन कुमार एक खुशमिज़ाज इंसान, ज़िम्मेदार सरकारी अफ़सर और मोहतात लबोलहजे के शायर हैं। उनकी मनसबी मसरूफ़ियत ने अगर उन्हें आइन्दा भी ग़ज़ल के साथ खुल खेलने का भरपूर मौक़ा दिया तो वह यक़ीनन ग़ज़ल की पेशानी पर अपना



नाम लिखकर इसकी मुमलिकत को वर्सीअ से वर्सीअ तर करेंगे। मुझे उनकी शायरी से भी कुर्बत हासिल है और अक्सर उनके किसी न किसी शेर ने ठहर-ठहर कर मुझे गौरोफ्फिक्र की दावत भी दी है।

पवन कुमार के मजमूआ-ए-कलाम, जो कि शायरी के क़द्रदानों के दरवाजे पर उनकी पहली दस्तक है, में बहुत से खूबसूरत अशआर आपकी तवज्जो के मुंतज़र हैं। मेरी दुआ है कि किताब की शक्ति में ढलने जा रहे इन अशआर के साथ ही खुदा उनके फ़िक्रोफ़न के उन बेशुमार जु़गनुओं को भी मंज़िल से हमकनार फ़रमाये जो बारगाहे ग़ज़ल तक रसाई के लिए पर खोल रहे हैं।

—अङ्कील नोमानी

इब्लिदा...

नहीं जानता कि ग़ज़ल की तरफ़ रुझान कब से हुआ पर यह ज़रूर याद है और शायद बहुत अच्छी तरह याद है कि झुकाव कॉलेज के दिनों से शुरू हुआ। पहले सिफ़्र सुनने का शौक था। याद आता है कि अस्सी के दशक में रेडियो विविध भारती पर रात नौ बजे ग़ज़लों का एक कार्यक्रम आया करता था। मैं एक ओर गणित के इबारती सवालों में डूबा रहता तो दूसरी और ट्रांज़िस्टर चलता रहता था। मैं यह तो नहीं कह सकता कि तब ग़ज़लें समझ में आया करती थीं पर यह पूरी हिम्मत के साथ कह सकता हूँ कि ग़ज़लों में एक सुरुर सा ज़रूर महसूस होता था जो मुझे ख़ला की ओर ले जाता था। यह गहरेपन में जाने का अहसास धीरे-धीरे और गहराता चला गया। ग़ज़ल के मआनी तब समझ में नहीं आते थे। और तो और अब सोच के हँसी आती है उस बचकानेपन पर जब मैं सोचा करता था कि सबसे अच्छा शायर कौन है, मेहंदी हसन, बेगम अख्बार, फ़रीदा ख़ानम या...। मतलब यह है कि आठवें दर्जे में पढ़ने वाला लड़का ग़ज़ल सुनता ज़रूर था पर उसे शायर और सिंगर के बीच अन्तर भी पता नहीं था।

वक्त के पहिये के साथ दिमाग कुछ खुला। दसवें-ग्यारहवें दर्जे में आने के बाद जाना कि शायर और सिंगर में क्या अन्तर है। दरअस्ल घर में, ख़ानदान में, यार दोस्तों में और तो और आसपास भी ऐसा कोई न था जो इन सब अदबी चीज़ों के बारे में बताता, बस सब कुछ यूँ ही सीखता रहा। माँ-पिता जी तो ग़ज़लों से कोसों दूर थे। पिता जी को अपनी पुलिस की वर्दी से आगे शायद ही कुछ पता था और माँ...जानकार थीं, समझदार भी थीं मगर उनकी जानकारी और समझदारी की भी अपनी सीमाएं





थीं। मैं कोई आरोप नहीं लगा रहा हूँ अपने माँ-पिता जी पर...न ही मैं उनसे कोई शिकवा-गिला कर सकता हूँ इस बात का। दरअस्त ज्यादातर माँ-बाप अपने बच्चों को ऐसी तालीम तो देते हैं कि बच्चा नौकरी के लायक हो जाए या कारोबार कर ले पर शायद ही कभी ऐसी दुनिया से उनका तआरूफ, कराते हैं जो सचमुच उसकी भावनाओं और उसकी मासूमियत की सही पज़ीराई कर सके।

खैर...यह तो रही बचपन की बात! सेण्ट जॉन्स कॉलेज आगरा में ग्रेजुएशन में दाखिला लिया। आगरा में उन दिनों ताज महोत्सव शुरू हुआ था जिसमें अखिल भारतीय मुशायरा भी होता था। मुझमें अब तक मुशायरों में जाकर शायरों के कलाम सुनने का शौक परवान छढ़ने लगा था। कुछ शायरों को तो मैं पहचानने भी लगा था...बशीर बद्र, जावेद अख्तर, कृष्ण बिहारी नूर, शमीम जयपुरी, अदम गोंडवी, हसन कमाल, वसीम बरेलवी आदि, और भी कई सारे।

इधर मैं ग्रेजुएट होने के बाद ‘दैनिक जागरण’ अख्बार में एक स्वतन्त्र संवाददाता की हैसियत से अपने पैत्रिक नगर मैनपुरी में रोज़ाना कॉलम लिखा करता था। कलम और कॉलम का यह सिलसिला कलाम के जादूगरों तक ले आया।

मैनपुरी का सालाना आकर्षण श्री देवी मेला (नुमाईश) पूरे महीने चलती थी। इसमें महीने भर रोज़ाना अलग-अलग तरह के प्रोग्राम “कादम्बरी मंच” पर आयोजित किये जाते थे। इन्हीं में एक दिन ‘अखिल भारतीय मुशायरा’ भी था। लगातार कई बरस तक मैं दैनिक जागरण के लिए मुशायरे की रिपोर्टिंग करता रहा।

रिपोर्टिंग के चलते इककीस—बाइस बरस का होते-होते मैं तमाम शायरों से मिला, उनके इण्टरव्यू लिए जो अख्बार में छपे, छपने के बाद मैंने वो शुमारे उन शायरों को

बाई-पोस्ट भेजे। इसी सिलसिले में एक बार बशीर बद्र साहब का इंटरव्यू लेने का मौका मिला। बशीर साहब का जादू मुशायरों में सर चढ़के बोलता था। बशीर साहब का मैं बड़ा मुरीद था। ऐसे में बशीर साहब का जब इंटरव्यू मैंने लिया, मैं अपने आपको उस समय क्या समझा था, बता नहीं सकता। इंटरव्यू लिया और आखिर में मैंने अपनी एक ‘ओटोग्राफ बुक’ उनकी ओर बढ़ा दी। बशीर बद्र साहब ने मुझसे क़लम माँगा। मैंने अपना क़लम आगे बढ़ाया। उन्होंने नफ़ासत से ‘ऑटोग्राफ बुक’ को पकड़ा और कुछ लिखा। जब तक वे उस ‘बुक’ पर कुछ लिखते रहे, मैं उन्हें निहारता रहा। अचानक जैसे नींद से जाग गया, देखा कि बशीर साहब कह रहे हैं कि ‘लीजिये जनाब आपके लिए’...। मैंने ग़ौर से उनकी तहरीर को देखा, पढ़ा, लिखा था—

खुदा तुमको ऐसी खुदाई न दे,
कि अपने सिवा कुछ दिखाई न दे

वह बुक मैंने संभाल कर रखी। इधर मेरा चयन पी.सी.एस. सेवा में हो गया। नैनीताल में पी.सी.एस. की एक बरस की ट्रेनिंग के बाद जब मैं घर गया, उस नोट बुक को अपनी अलमारी से निकाला तो एक झटका सा लगा। लकड़ी की उस अलमारी में ऐसी दीमक लगी कि नोट बुक अब चिन्दी-चिन्दी हो चुकी थी। वो लम्हा कितना बोझिल था, बस मैं ही जानता हूँ। ख़ैर...बशीर साहब का शुक्रिया कि उन्होंने इतनी ख़ूबसूरत नसीहत मुझे दी थी और वह भी अपने हाथों से लिख के...।

प्रशासनिक सेवा में आने के बाद से मैं कुछ हल्की-फुल्की रचनाएं भी करने लगा था जिनका सिलसिला आज तक जारी है। चूँकि शायरी हो तो जाती थी पर उसमें व्याकरण का ज़बरदस्त अभाव रहता था। शायद इसकी वजह यह थी कि मैं तमाम चाहने के बाद भी ग़ज़ल के उयूबों-महासिन को समझने के लिए बाक़ायदा किसी उस्ताद से रुजूअ नहीं कर सका। वैसे ग़ज़ल कहने के बाद मैं अपनी माँ



को अवश्य सुनाया करता था, मैं नहीं जानता कि वो उन अशआर का क्या मतलब निकालती होंगी। बाद में मैं अपने भाईयों और दोस्तों को भी अपने सुनने वालों में शामिल करने लगा। प्रशासन में आने के बाद यही काम मेरे मित्र मनीष शुक्ल ने किया। मुझसे उम्र में कुछ ही बड़ा होगा वह पर ग़ज़ल लिखने का हुनर खुदा ने उसे खूब अता किया है। नहीं जानता कि वह सच कहता था कि ग़लत। ग़ज़ल पर जब हम दोनों की जमती तो दोनों एक-दूसरे को अपना कलाम सुनाते। वह कहता, “पवन, तुम तो बहुत अच्छा लिखते हो।” मनीष की इस हौसला अफ़ज़ाई ने मुझमें ग़ज़लगोई के ज़ज्बे को और शिद्दत बख्ती, शुक्रिया मनीष। मनीष के अलावा संजीव, ब्रजेश, सुमति, नीरज, प्रमोद आदि का भी शुक्रगुज़ार हूँ कि उन्होंने समय-समय पर हौसला बढ़ाने का काम किया।

वर्ष 2003 में मेरा स्थानांतरण बरेली हो गया। बरेली तबादला मेरे लिए अदबी समझ में इज़ाफ़ा करने में बेशकीमत साबित हुआ। बरेली वैसे भी शायरी के मुआमले में उस्तादों का शहर रहा है। कैफ़ी वजदानी, अनवर चुगताई जैसे पुराने पीढ़ी के शायरों से इस शहर को हमेशा रोशनी मिलती रही है। बरेली में आना और शायरी के एक अहम नाम वसीम बरेलवी से न मिलना, मैं सोच भी नहीं सकता। वसीम बरेलवी से मुहब्बतों का सिलसिला आज भी जारी है।

बरेली का ज़िक्र अक़रील नोमानी के बगैर अधूरा है। जनाब अक़रील नोमानी से मेरी मुलाक़ात मीरगंज क़स्बे में हुई। जनाब अक़रील नोमानी के साथ पहली मुलाक़ात से ही एक अजीब सा अज़ीज़ाना राब्ता कायम हो गया, जो आज तक जारी-ओ-सारी है। आज यह मज़मुआ ‘वाबस्ता’ अगर आपके हाथों में और आपकी नज़रों के सामने है तो इसका सबसे बड़ा श्रेय जनाब अक़रील नोमानी को ही है। मेरी ग़ज़लों को तरतीब से परोसने में उनकी उस्तादाना भूमिका रही है। मज़मुए में जो भी अच्छा लगे उसके

लिए अकील साहब हक्कदार हैं, बाकी के लिए मैं।

बेतरतीब से पड़े काग़जों को मज़मुए की शक्ति में आप तक लाने में पंकज (जो आजकल व्यापार कर में उप-आयुक्त हैं), हृदेश (हिन्दुस्तान में सह संपादक), पुष्पेन्द्र, श्यामकांत को भी मैं ज़हन में लाना चाहूँगा, जिनके बगैर यह मज़मुआ आना मुमकिन न था।

और अन्त में हममिज़ाज 'गेसू' का ज़िक्र इन्तहाई ज़रूरी है जो हमारे ट्रेनिंग पीरियड में हमसफ़र थीं। उनमें और तो सब कुछ खुदा का दिया था ही, साथ ही लिखती भी बहुत अच्छा थीं। उसकी डायरी में एक शेर था... 'मजाज़' की तर्ज पर

मैं जिस दुनिया की तलाश में सरगरदाँ रहती हूँ
उसके कुछ बाशिन्दे मुझको अक्सर मिल जाते हैं

यह शेर मुझे बहुत अच्छा लगता था। इत्फ़ाक़ देखिए कि वह डायरी भी मेरे पास महफूज़ है और वो खुद भी ज़िंदगी की हमसफ़र के रूप में। यह 'वाबस्ता' उसी की हिफ़ाज़त की गवाही है, और कुछ नहीं...।

वो तितली की तरह, पल पल ठिकाने ब ठिकाने तुम
मगर हम भी अजब साइल सभी फूलों से वाबस्ता

आपकी दुआओं का तलबगार....

सिंह सदन, गली नं. 7-ए
राजा का बाग
मैनपुरी (उ.प्र.)

पवन कुमार



द्वितीय संस्करण के लिए...

शुक्रिया

‘वाबस्ता’ का द्वितीय संस्करण आपको सौंपते हुए स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहा हूँ। ‘वाबस्ता’ के प्रथम संस्करण को आपने जो स्नेह दिया उससे मैं अभिभूत हूँ। उसी वज़ह से बहुत कम समय में ‘वाबस्ता’ का प्रथम संस्करण कम पड़ गया है। यह मेरे लिए एक बड़ी उपलब्धि भी है और हर्षानुभूति भी। सच तो यह है कि आप सुधिजनों का ये स्नेह ही मेरे रचनाकर्म का संबल है, जो मुझमें सृजन के प्रति निरंतरता बनाये हुए है। प्रकाशक के मुसलसल तकाज़ों के बावजूद ‘वाबस्ता’ के पहले संस्करण की कुछ वर्तनी अशुद्धियों को समय से सही न कर पाने की वज़ह से इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित नहीं हो पा रहा था, ज़ाहिर है इसके लिए मैं ही दोषी हूँ। इसी दरम्याँ इस मज़मुए पर जयशंकर प्रसाद सम्मान, जीशान मकबूल अवार्ड और कन्हैया लाल मिश्र ‘प्रभाकर’ स्मृति सम्मान मिला। बहरहाल सरकारी मसरूफियात से जूझते हुए जो करेक्षण लाज़िम थे, कर दिये हैं। ज़ियादा क्या कहूँ बस यही कि इस नाचीज़ की हौसला अफ़ज़ाई के लिए फिर से आप सबका शुक्रगुज़ार हूँ। मुहब्बत बनाये रखिएगा....

—पवन कुमार

ગુજરાતો





●

उतरा है खुदसरी पे वो कच्चा मकान अब
लाज़िम है बारिशों का मियां इम्तिहान अब

मुश्किल सफ़र है कोई नहीं सायबान अब
है धूप रास्तों पे बहुत मेहरबान अब

कुर्बत के इन पलों में यही सोचता हूँ मैं
कुछ अनकहा है उसके मिरे दर्मियान अब

याद आ गयी किसी के तबस्सुम की इक झलक
है दिल मेरा महकता हुआ ज़ाफ़रान अब

यादों को क़ैद करने की ऐसी सजा मिली
वो एक पल संभाले है दिल की कमान अब

खुदसरी = मनमानी, सायबान = छाया, कुर्बत = सामीय, ज़ाफ़रान = केसर



●

कुछ लतीफों को सुनते सुनाते हुए
उम्र गुजरेगी हंसते हंसाते हुए

अलविदा कह दिया मुस्कुराते हुए
कितने ग़म दे गया कोई जाते हुए

सारी दुनिया बदल सी गयी दोस्तो
आँख से चंद पर्दे हटाते हुए

सोचता हूँ कि शायद घटें दूरियां
दरमियां फ़ासले कुछ बढ़ाते हुए

एक एहसास कुछ मुख्तलिफ़ सा रहा
सर को पथर के साथ आज़माते हुए

ज़िंदगी क्या है, क्यों है, पता ही नहीं
उम्र गुजरी मगर सर खपाते हुए

याद आती रहीं चंद नदियाँ हमें
कुछ पहाड़ों में रस्ते बनाते हुए

चाँद है गुमशुदा तो कोई ग़म नहीं
चंद तारे तो हैं टिमिमाते हुए

●

हम तुम हैं आधी रात है और माहे-नीम है
क्या इसके बाद भी कोई मंज़र अज़ीम है

लहरों को भेजता है तकाज़े के वास्ते
साहिल है कर्जदार समंदर मुनीम है

वो खुश कि उसके हिस्से में आया है सारा बाग
मैं खुश कि मेरे हिस्से में बादे-नसीम है

क्या वज्ह पेश आयी अधूरा है जो सफर
रस्ता ही थक गया है कि राही मुक्कीम है

जब जब हुआ फ़साद तो हर एक पारसा
साबित हुआ कि चाल चलन से यतीम है

फ़ेहरिस्त में तो नाम बहुत दर्ज हैं मगर
जो गर्दिशों में साथ रहे वो नदीम है

मज़हब का जो अलम लिए फिरते हैं आजकल
उनकी नज़र में राम न दिल में रहीम है

साया है कम तो फ़िक्र नहीं क्यूँ कि वो शजर
ऊँचाई की हवस के लिए मुस्तकीम है

अज़ीम = शानदार, वुसूलयाबी = वसूलने के लिए, बाद-ए-नसीम = शीतल/सुगन्धित हवा,
मुक्कीम = ठहरा हुआ, फ़साद = झगड़ा, नदीम = दोस्त, मुस्तकीम = सीधा खड़ा हुआ





●
सिर्फ ज़रा सी ज़िद की खातिर अपनी जाँ से गुजर गए
एक शिकस्ता कश्ती लेकर हम दरिया में उतर गए

तन्हाई में बैठे बैठे यूँ ही तुमको सोचा तो
भूले बिसरे कितने मंज़र इन आँखों से गुजर गए

जब तक तुम थे पास हमारे ऩगमा रेज़ फ़ज़ाएँ थीं
और तुम्हारे जाते ही फिर सन्नाटे से पसर गए

उसकी भोली सूरत ने ये कैसा जादू कर डाला
उससे मुखातिब होते ही सब मेरे इल्मो-हुनर गए

मज़हब, दौलत, ज़ात, घराना, सरहद, गैरत, खुदारी
एक मुहब्बत की चादर को कितने चूहे कुतर गए

हर पल अब भी इन आँखों में उसका चेहरा रहता है
कहने को मुदत गुज़री है उसकी जानिब नज़र गए

हीरें भी क्यूँ शर्मिदा हों नयी कहानी लिखने में
जब इस दौर के सब रँझे ही अहदे-वफ़ा से मुकर गए

●

जहाँ हमेशा समंदर ने मेहरबानी की
उसी ज़मीन पे क़िल्लत है आज पानी की

उदास रात की चौखट पे मुंतज़िर आँखें
हमारे नाम मुहब्बत ने ये निशानी की

तुम्हारे शहर में किस तरह जिंदगी गुज़रे
यहाँ कमी है तबस्सुम की, शादमानी की

मैं भूल जाऊँ तुम्हें सोच भी नहीं सकता
तुम्हारे साथ जुड़ी है कड़ी कहानी की

उसे बताये बिना उम्र भर रहे उसके
किसी ने ऐसे मुहब्बत की पासबानी की

शादमानी = प्रसन्नता, पासबानी = पहरेदारी



●

वो अक्सर मेरे सब्रो-ज़ब्त को यूँ आज्ञाते हैं
हवा ज़ख्मों को देकर फिर नमक उन पर लगाते हैं

यहाँ तो हर घड़ी हर सिम्ट इक हंगामा बरपा है
किसी ख़ामोश वादी में चलो धूनी रमाते हैं

ज़रूरत आदमी को आदमी रहने नहीं देती
मगर सब इस हक्कीक़त से हमेशा मुँह छुपाते हैं

लगाओ कितने ही इल्ज़ाम तुम हम पर मुहब्बत में
मियाँ इन तोहमतों से हम कहाँ दामन बचाते हैं

ज़रा सी ठेस लगते ही बिखर जायेंगे पलकों पर
पता है फिर भी हम ख़बाबों को आँखों में सजाते हैं

अँधेरा जब भी ना उम्मीदियों का बढ़ने लगता है
तुम्हारी याद की शम्खें जलाते हैं बुझाते हैं

मिरे हमदर्द कुछ इस तरहः हमदर्दी दिखाते हैं
कहीं से दर्द उठता है कहीं मरहम लगाते हैं

सब्रो-ज़ब्त = धैर्य और सहन करना



●

तुम्हें पाने की धुन इस दिल को यूँ अक्सर सताती है
बंधी मुट्ठी में जैसे कोई तितली फड़फड़ाती है

चहक उठता है दिन और शाम नगमें गुनगुनाती है
तुम्हारे पास आता हूँ तो हर शय मुस्कुराती है

मुझे ये ज़िंदगी अपनी तरफ कुछ यूँ बुलाती है
किसी मेले में कुलफ़ी जैसे बच्चों को लुभाती है

वही बेरंग सी सुहँ वही बेकैफ़ सी शामें
मुझे तू मुस्तक्किल ऐ ज़िन्दगी क्यूँ आज़माती है

कबीलों की रिवायत, बंदिशें, तफरीक नस्लों की
मुहब्बत इन झमेलों में पड़े तो हार जाती है

किसी मुश्किल में वो ताकत कहाँ जो रास्ता रोके
मैं जब घर से निकलता हूँ तो माँ टीका लगाती है

न जाने किस तरह का क़र्ज़ वाजिब था बुजुर्गों पर
हमारी नस्ल जिसकी आज तक क़िस्तें चुकाती है

हवाला दे के त्योहारों का रस्मों का रिवाजों का
अभी तक गांव की मिट्ठी इशारों से बुलाती है

बेकैफ़ = आनन्द रहित, मुस्तक्किल = दृढ़ता, तफरीक = भेदभाव



●
दिल में कोई खलिश छुपाये हैं
यार आईना ले के आये हैं

अब तो पत्थर ही उनकी क्रिस्मत हैं
जिन दरख्तों ने फल उगाये हैं

दर्द रिसते थे सारे लफ़ज़ों से
ऐसे नग्मे भी गुनगुनाये हैं

अम्न वालों की इस क़वायद पर
सुनते हैं “बुद्ध मुस्कुराये हैं”

अब ये आवारगी का आलम है
पाँव अपने सफ़र पराये हैं

जब कि आँखें ही तर्जुमां ठहरीं
लफ़ज़ होंठों पे क्यों सजाये हैं

कच्ची दीवार मैं था बारिश वो
हौसले खूब आज़माये हैं

देर तक इस गुमाँ में सोते रहे
दूर तक खुशगवार साये हैं

जिस्म के ज़ख्म हों तो दिख जायें
रुह पर हमने ज़ख्म खाये हैं

●

ज़रा सी चोट को महसूस करके टूट जाते हैं
सलामत आईने रहते हैं चेहरे टूट जाते हैं

पनपते हैं यहाँ रिश्ते हिजाबों एहतियातों में
बहुत बेबाक होते हैं तो रिश्ते टूट जाते हैं

दिखाते ही नहीं जो मुद्दतों तिश्नालबी अपनी
सुबू के सामने आकर वो प्यासे टूट जाते हैं

किसी कमज़ोर की मज़बूत से चाहत यही देगी
कि मौजें सिर्फ़ छूती हैं, किनारे टूट जाते हैं

यही इक आखिरी सच है जो हर रिश्ते पे चस्पां है
ज़रूरत के समय अक्सर भरोसे टूट जाते हैं

गुज़ारिश अब बुजुर्गों से यही करना मुनासिब है
ज़ियादा हों जो उम्मीदें तो बच्चे टूट जाते हैं

मौजें = लहरें, चस्पां = चिपका हुआ



अजब गुलशन का मंजर हो गया है
यहाँ हर फूल नश्तर हो गया है

तरसते हैं कहीं दो बूँद को लोग
कहीं हरसू समन्दर हो गया है

कभी खुद को नहीं देखा था जिसने
सुना है आईनागर हो गया है

कहीं चुभता है मखमल भी बदन में
कहीं फुटपाथ बिस्तर हो गया है

हमारे दोस्तों के खेलने को
हमारा दिल भी चौसर हो गया है

बिना मक्सद सहर से शाम करना
यही अपना मुकद्दर हो गया है

खलाओं में उतरना चाहता हूँ
बहुत दिलकश ये मंजर हो गया है

हरसू = हर तरफ, आईनागर = आईना बनाने वाला, खला = आकाश

●

सभी को है ये धोका हम पले हैं शादमानी में
मगर ये उम्र गुजरी है ग़मों की पासबानी में

हमें गर्दिश में शायद ही कोई अपना कहे लेकिन
हज़ारों लोग होंगे साथ ज़श्ने-कामरानी में

न जाने कौन सी करवट हमारी ज़िन्दगी लेगी
नए किरदार शामिल होने वाले हैं कहानी में

सिवा उसके हमारे पास अब कुछ भी नहीं बाकी
वो इक तावीज़ जो अम्मा ने सौंपा था निशानी में

शिकायत क्या करें उससे कि लहजे में बनावट है
हमें तो लुत्फ़ आता है फ़क्रत सादा बयानी में

शादमानी = प्रसन्नता, पासबानी = पहरेदारी, कामरानी = विजय/जीत



●

कभी तो है कभी गोया नहीं है
मगर ये सच है तू खोया नहीं है

इन्हीं से अब सुकूं पाने की ज़िद में
किसी भी दाग़ को धोया नहीं है

तेरे हर नक्श को दिल से जिया है
तुझे ऐ ज़िन्दगी ढोया नहीं है

उगेगा ख़ौफ़ ही आँखों में अब तो
सिवा-ए-मौत कुछ बोया नहीं है

मुझे भी ख़्वाब होना था उसी का
मेरी क्रिस्त कि वो सोया नहीं है

न जाने उसको कितने गम मिले हैं
हुई मुद्रदत कि वो रोया नहीं है

●

कहने को इंसान बहुत हैं
पर इनमें बेजान बहुत हैं

मैं इक सादा वरक़ अकेला
बंधने को जु़जदान बहुत है

कच्चे रंग सँभालें खुद को
बारिश के इम्कान बहुत हैं

दरियादिल है शायद मालिक
इस घर में मेहमान बहुत हैं

काश इनमें कुछ फूल भी होते
कमरे में गुलदान बहुत हैं

काश कि कोई ज़हन भी चमके
जिस्म यहाँ ज़ीशान बहुत हैं

इश्क़ ही नेमत इश्क़ खुदाई
पर इसमें नुक़सान बहुत हैं

वरक = पृष्ठ, जु़जदान = पुस्तक बांधने का कपड़ा, इम्कान = सम्भावना, ज़ीशान = चमक



●
किसकी कहें, हालात से अपने कौन यहाँ बेज़ार नहीं
ग़म से परेशाँ सब मिलते हैं, पर कोई ग़मख़्वार नहीं

या तो मंज़िल दूर हो गयी, या फिर रस्ते मुश्किल हैं
क्यूँ मेरे क़दमों में अब वो पहली सी रफ़तार नहीं

मह़ज़ हाकिमों की दुनिया ही उनकी ख़ातिर ख़बरें हैं
मज़लूमों के हक़ में लिखने वाले अब अख़बार नहीं

शहरों की तहज़ीब पे जब भी तंज़ करूँ तो लगता है
गाँवों में भी अब पहले सा अपनापन और प्यार नहीं

बेच चुका हूँ, नज़्में ग़ज़लें महफ़िल महफ़िल गा गाकर
खुद मेरे हिस्से में अब तो मेरे ही अशआर नहीं

कहने को मैं रंग रूप में उसके जैसा लगता हूँ
पर मेरे लहजे में उस जैसा तर्ज़-इज़हार नहीं

मेरे मुँह पर मेरे जैसी उसके मुँह पर उस जैसी
रंग बदलती इस दुनियां में सब कुछ है किरदार नहीं

बेज़ार = अप्रसन्न, ग़मख़्वार = ग़म खाने वाला, तर्ज़-इज़हार = व्यक्त करने का ढंग

●

अब्बा के बाद घर की बदली हुई हवा है
सहमा हुआ है आंगन सिमटी हुई हवा है

अब देखना है किसको मिलती है कामयाबी
जलते हुए दिये से उलझी हुई हवा है

क्यूँ हर तरफ नगर में फैली है बदगुमानी
शोले सुलग रहे हैं दहकी हुई हवा है

शायद तिलिस्म सा है आमद का कुछ तुम्हारी
खुश है तमाम आलम बहकी हुई हवा है

इक तुम ही मेरे मोहसिन बदले हुए नहीं हो
जब से निजाम बदला बदली हुई हवा है

क्या सरहदों के मानी क्या दुश्मनी का मतलब
जब दोनों ओर यकसाँ बहती हुई हवा है

तिलिस्म = जादू, आलम = संसार, मोहसिन = मित्र, निजाम = शासक, यकसाँ = एक ही तरह की



●

हर इक उम्मीद कल पर टल रही है
हमारी ज़िंदगी बस चल रही है

ज़रूरत है बहुत लब खोलने की
तुम्हारी खामुशी अब खल रही है

मिरे हक में नहीं है कोई मंज़िल
मगर उम्मीद दिल में पल रही है

बड़ी शादाब है ये रात तुमसे
मगर अफ़सोस ये भी ढल रही है

जिसे कहते हैं जन्नत इस जर्मीं की
उसी वादी में बर्फ अब जल रही है

इसे तो जीतना था नफरतों को
मुहब्बत हाथ कैसे मल रही है

शादाब = हरा-भरा

●

मुस्किन है कि लहजे का मज़ा तुमको भी आ जाए
मैं दिल से सुनाता हूँ मुझे दिल से सुना जाए

सौग़ात वो खुशियों की लुटाता है मुसलसल
उस शख्स को इंसां की जगह फूल कहा जाए

अब ज़हन में दुश्मन का कोई खौफ़ न रखिए
ये दौर वो है जिसमें कि यारों से बचा जाए

तन्हाई में यूं तेरा ख़याल आता है अक्सर
जैसे कि अँधेरे में कोई शम्मा जला जाए

साहिल से कहो अब न मिरी पुश्त सम्हाले
मैं जिद पे अड़ा हूँ कि समन्दर से लड़ा जाए

वो कौन है जो अर्श पे टांके है सितारे
वो कौन है जो चांदनी का फ़र्श बिछा जाए

अल्लाह कभी हम को भी तौफ़ीक़ अता कर
मंज़िल के लिए निकलें तो मंज़िल पे रुका जाए

पुश्त = पीठ, अर्श = आसमान, तौफ़ीक़ = सामर्थ्य



●

कोई भी तज्जिकरा या गुफ्तगू हो
तेरा चर्चा ही अब तो कू-ब-कू हो

मयस्तर बस वही होता नहीं है
दिलों को जिसकी अक्सर जुस्तजू हो

ये आँखें मुन्तजिर रहती हैं जिसकी
उसे भी काश मेरी आरङ्गू हो

मुखातिब इस तरह तुम हो कि जैसे
मेरा एहसास मेरे रुबरु हो

तुम्हें हासिल ज़माने भर के गुलशन
मेरे हिस्से में भी कुछ रंग ओ बू हो

नहीं कुछ कहने सुनने की ज़खरत
निगाहे यार से जब गुफ्तगू हो

तज्जिकरा = चर्चा, कू-ब-कू = गली-गली, मुन्तजिर = प्रतीक्षारत, मुखातिब = सामने

●

यूँ तो हर पल इन्हें भिगोना ठीक नहीं
फिर भी आँख का बंजर होना ठीक नहीं

दिल जो इजाजत दे तो हाथ मिलाओ तुम
बेमतलब के रिश्ते ढोना ठीक नहीं

हर आँसू की अपनी क़ीमत होती है
छोटी-छोटी बात पे रोना ठीक नहीं

बाशिंदे इस बस्ती के सब भोले हैं
इन पर कोई जादू टोना ठीक नहीं

एहसासात में भीगी कोई नज़म लिखो
बेमतलब अल्फ़ाज़ पिरोना ठीक नहीं

बेहतर कल की आस में जीने की ख़ातिर
अच्छे ख़ासे आज को खोना ठीक नहीं

मुख्तारी तो ऐसे भी दिख जाती है
आँगन में बंदूकें बोना ठीक नहीं

दिये के जैसी रोशन तेरी आँखें हैं
फ़स्ले-आब को इनमें बोना ठीक नहीं

बाशिंदा = रहने वाला, मुख्तारी = अधिकार प्राप्त व्यक्ति, फ़स्ले-ए-आब = पानी की फ़सल





●
ज़र्मीं पर किस क़दर पहरे हुए हैं
परिंदे अर्श पर ठहरे हुए हैं

बस इस धुन में कि गहरा हो तअल्लुक़
हमारे फ़ासले गहरे हुए हैं

नज़र आते नहीं अब रास्ते भी
घने कुहरे में सब ठहरे हुए हैं

करें इन्साफ़ की उम्मीद किससे
सभी मुंसिफ़ यहाँ बहरे हुए हैं

वही एक सब्ज़ मंज़र है कि जब से
नज़र पे काई के पहरे हुए हैं

अर्श = आकाश, मुंसिफ़ = न्यायाधीश, सब्ज़ = हरा रंग

●

इश्क में लज्जते मिला देखूँ
उससे करके कोई गिला देखूँ

कुछ तो खामोशियाँ सिमट जाएँ
परदा-ए-दर को ले हिला देखूँ

पक गए होंगे फल यकीनन अब
पथरों से शजर हिला देखूँ

जाने क्यूँ खुद से खौफ लगता है
कोई खंडहर सा जब क़िला देखूँ

इक हर्सीं कायनात बनती है
सारे चेहरों को जब मिला देखूँ

कौन दिल्ली में 'रेख्ता' समझे
सबका इंगलिस से सिलसिला देखूँ

बैठ जाऊँ कभी जो मैं तन्हा
गुजरे लम्हों का क़ाफ़िला देखूँ

रेख्ता = दिल्ली की ठेठ उर्दू भाषा



●
कहीं पर खुश्बूएँ बिखरीं, कहीं तरतीब उजालों की
बड़ी पुरकैफ हैं राहें तिरे ख्वाबों ख्यालों की
पड़े रहते हैं कोने में लपेटे गर्द की चादर
हमारी ज़िंदगी तस्वीर है शेरी रिसालों की
उसी ने तीरगी से तंग आकर खुदकुशी कर ली
हमेशा भीख देता था जो हम सबको उजालों की
किया यूं था कि हमने दिल के थोड़े राज़ खोले थे
हुआ ये है झड़ी सी लग गई हम पर सवालों की
वहाँ फिर किस तरह लड़ते भला आपस में हम यारों
जहाँ मस्जिद से होकर राह जाती है शिवालों की
तुम्हारे नाम से ही दिल की दुनिया जगमगाती है
हमें ख्वाहिश कहाँ हैं चांद सूरज के उजालों की

●

वो कभी गुल कभी ख़ार होते रहे
फिर भी हम उनको दिल में संजोते रहे

इश्क का पैरहन यूँ तो बेदाग़ा था
हम मगर उसको अश्कों से धोते रहे

वादियों में धमाकों की आवाज से
सुर्ख गुंचे जो थे ज़र्द होते रहे

काट डाला उसी पेड़ को एक दिन
मुद्दतों जिसके साए में सोते रहे

मोहतरम हो गए वो जो बदनाम थे
हम शराफ़त को काँधों पे ढोते रहे

मंजिलें उनको मिलतीं भी कैसे भला
हौसले हादसों में जो खोते रहे

आऱजू थी उगें सारे मंजर हसीं
इसलिए फ़स्ल ख़बाबों की बोते रहे

पैरहन = लिवास, ज़र्द = पीला, मुर्झाना





जिन्दगी भी उन्हें बख्खाती किसलिए
बोझ की तरह जो इसको ढोते रहे

ये न देखा कि छत मेरी कमज़ोर है
देर तक घर को बादल भिगोते रहे

●

किस किस तरह से दोस्तों बीती है ज़िन्दगी
दरिया सी चढ़ के, बाढ़ सी उतरी है ज़िन्दगी

तुम पास थे तो चाँदनी अपने क़रीब थी
तुम दूर हो तो धूप में तपती है ज़िन्दगी

यक मुश्त ज़िन्दगी है तो है तेरे वास्ते
वैसे तो लाख हिस्सों में बिखरी है ज़िन्दगी

शिकवे शिकायतें तो बहुत तुझसे हैं मगर
मेरी नज़र से तू नहीं उतरी है ज़िन्दगी

दिन के तमाम सिलसिले दिन से जुड़े मगर
हर रात तेरे साथ से संवरी है ज़िन्दगी

लज्जत है, डूबने में मगर मुश्किलें भी हैं
एक ऐसी ख्वाहिशात की नद्रदी है ज़िन्दगी

देखो अगर तो ऐश का सामान है मगर
सोचो तो सिर्फ दर्द की गठरी है ज़िन्दगी





●

रात दिन अपने घर में रहता है
जाने कैसे सफ़र में रहता है

बच के रहता है अपनी आँखों से
वो जो सबकी नज़र में रहता है

मस'अले क्या ज़मीन के समझे
वो तो शम्सो-कमर में रहता है

ज़ेहन अपना कहीं भी जाये मियां
दिल तो ख़ौफ़ो-ख़तर में रहता है

अपना ईमां बदल भी जाए मगर
इक नज़र के असर में रहता है

शम्सो-कमर = सूरज और चांद, ख़ौफ़ो-ख़तर = भय/डर

●

हर चेहरे की यह तहरीर
कुछ बाजू और कुछ तक़दीर

पेट की ख़ातिर सारे करतब
डाकू हो या कोई फ़कीर

तुम अपनी खुद राह तलाशो
आबे-रवाँ की तुम्हें नज़ीर

बेचारा क्या ख़ाक बचेगा
एक परिंदा इतने तीर

तेरे मेरे सुखन बेअसर
एक थे 'गालिब' एक थे 'मीर'

बाजू = बाहें, आबे-रवाँ = बहता हुआ पानी, नज़ीर = उदाहरण, सुखन = कविता



●

तुमसे मिलने की आस बाकी है
पास दरिया है प्यास बाकी है

वो तो मिलता है अपने तेवर में
मुझमें अब भी मिठास बाकी है

मिल चुके हैं सभी से महफ़िल में
एक ही शरख़्व ख़ास बाकी है

अपने हिस्से की ज़िदंगी जी ली
उसके ग़म की असास बाकी है

ज़िस्म के ज़ख़्म सारे दिखते हैं
रुह पर इक लिबास बाकी है

असास = सामान

●

सांसों में लोबान जलाना आखिर क्यों
पल पल तेरी याद का आना आखिर क्यों

जिसको देखो वो मसरूफ है खुद ही में
रिश्तों का फिर ताना बाना आखिर क्यों

एक से खाँचें साँचें में सब ढलते हैं
फिर ये मज़हब ज़ात धराना आखिर क्यों

एक ख़ता यानी चाहत थी जीने की
पूरी उम्र का ये जुर्माना आखिर क्यों

मस'अले उसके शम्सो क़मर के होते हैं
मेरी मशक्कत आबो-दाना आखिर क्यों

लोबान = सुर्गित गोंद, मसरूफ = व्यस्त, शम्सो-क़मर = सूरज और चाँद, आबो-दाना = दाना-पानी



●
आखिर तज़ाद ज़िन्दगी में यूँ भी आ गए
फूलों के साथ ख़ार से रिश्ते जो भा गए

ऐसे भी दोस्त हैं कि जो मुश्किल के दौर में
सच्चाईयों से आँख मिलाना सिखा गए

जिस रोज़ जी में ठान लिया, जीत जायेंगे
यूँ तो हज़ार मर्तबा हम मात खा गए

आँखों में जज्ब हो गया है इस तरह से तू
नींदों के साथ ख़ाब भी दामन छुड़ा गए

नादानियों की नज़्र हुआ लम्ह-ए-विसाल
गुंचों से लिपटी तितलियाँ बच्चे उड़ा गए

तुम क्या गए कि जीने की वजहें चली गयीं
वो कैफ़ो रंगो नूर वो साज़ो सदा गए

तज़ाद = विपरीत परिस्थितियाँ, ख़ार = कांटे, नज़्र = बुरी दृष्टि, लम्ह-ए-विसाल = मिलन का क्षण

●

तेरी खातिर खुद को मिटा के देख लिया
दिल को यूं नादान बना के देख लिया

जब जब पलकें बन्द करूँ कुछ चुभता है
आँखों में इक ख़्वाब सजा के देख लिया

बेतरतीब सा घर ही अच्छा लगता है
बच्चों को चुपचाप बिठा के देख लिया

कोई शख्स लतीफ़ा क्यों बन जाता है
सबको अपना हाल सुना के देख लिया

खुदारी और गैरत कैसे जाती है
बुत के आगे सर को झुका के देख लिया

वस्त्ल के इक लम्हे में अक्सर हमने भी
सदियों का एहसास जगा के देख लिया



●
मिरी तन्हाई क्यों अपनी नहीं है
ये गुथी आज तक सुलझी नहीं है

बहुत हल्के से तुम दीवार छूना
नमी इसकी अभी उतरी नहीं है

मुआफ़ी बख़ा दी इस तंज के साथ
“तुम्हारी भूल ये पहली नहीं है”

ये दिल है इसको बन्द आँखों से समझो
कोई तहरीर या अर्जी नहीं है

वक़ारो-इज़ज़तो-शोहरत की मंज़िल
मुझे पाना है पर जल्दी नहीं है

बहुत चाहा तेरे लहजे में बोलूँ
मगर आवाज़ में नरमी नहीं है

तंज = व्यंग्य, वक़ार = वैभव



●

गुज़ारी ज़िन्दगी हमने भी अपनी इस क़रीने से
पियाला सामने रखकर किया परहेज पीने से।

अजब ये दौर है लगते हैं दुश्मन दोस्तों जैसे
कि लहरें भी मुसलसल रब्त रखती हैं सफ़ीने से

न पूछो कैसे हमने हिज्र की रातें गुज़ारी हैं
गिरे हैं आँख से आँसू उठा है दर्द सीने से

यहां हर शख्स बेशक भीड़ का हिस्सा ही लगता है
मगर इस भीड़ में कुछ लोग हैं अब भी नगीने से

समझता खूब हूँ जा कर कोई वापस नहीं आता
मगर एक आस पर ज़िन्दा हूँ मैं कितने महीने से

रहें महसूम रोटी से उगायें उम्र भर फस्लें
मज़ाक़ ऐसा भी होता है किसानों के पसीने से

कभी दर्जी, कभी आया, कभी हाकिम बनी है माँ
नहीं है उज्ज़वल उसको कोई भी किरदार जीने से

क़रीना = सलीका/तरीका, मुसलसल = लगातार, रब्त = सम्बन्ध, सफ़ीना = नाव, हिज्र = जुदाई,
उज्ज़वल = आपत्ति



●

समन्दर सामने और तिश्नगी है
अजब मुश्किल में मेरी ज़िंदगी है

तेरी आमद की ख़बरों का असर है
फ़िज़ां में खुशबुएं हैं ताज़गी है

दरो-दीवार से भी है मरासिम
मगर बुनियाद से वाबस्तगी है

वो आते ही नहीं हैं कर के वादा
हमारी मौत उनकी दिल्लगी है

तेरी आँखों से रोशन हैं नज़ारे
तेरी ज़ुल्फों से कोई शब जगी है

सुनाये थे जो नःमें कुर्बतों में
ख़्यालों में उन्हीं से नग़मगी है

लुटाता रोशनी है बेसबब जो
उसी के हङ्क में देखो तीरगी है

तिश्नगी = प्यास, मरासिम = जु़़ाव, कुर्बत = निकटता



ख़फा मुझसे हो तो मुझको सज़ा दो
ज़माने भर से क्या नाराज़गी है

तुम्हें हर सिस्त हो मंज़िल मुबारक
हमारे हक्क में बस आवारगी है

बुझा सकता किसी की प्यास मैं भी
समन्दर की यही बेचारगी है

सिस्त = तरफ/ओर/दिशा



●

मैं हूँ मुश्किल में, याद करते ही
दोस्त बदले हैं दिन बदलते ही

हर कदम पर थी किस कदर फिसलन
गिर गया मैं ज़रा संभलते ही

फिर नए ज़ख्म दे गया ज़ालिम
कुछ पुराने से धाव सिलते ही

कोरों-कोरों में कांच चुभते हैं
ख़बाब टूटे हैं आँख खुलते ही

है अजब सल्तनत भी सूरज की
रात बिखरी है दिन संवरते ही

पानियों का जुलूस देखा था
सख्त चट्टान के दरकते ही

वस्ल में वक्त ऐसे कटता है
शब गुज़र जाए पल झपकते ही

वस्ल = मिलन, शब = रात्रि

●

चुनी है राह जो काँटो भरी है
डरें क्यूँ हम तुम्हारी रहबरी है

हर इक शय में तुझी को सोचता हूँ
तिरे जलवों की सब जादूगरी है

खुला रहता है दरवाज़ा सभी पर
तुम्हारा दिल है या बारहदरी है

दिखावा किस लिए फिर दोस्ती का
अगर दिल में फ़क़त नफ़रत भरी है

वही मसरूफ़ दिन बेकैफ़ लम्हे
इसी का नाम शायद नौकरी है

सुना है फिर नया सूरज उगेगा
यही इक रात बस काँटों भरी है

वो कहता है छुड़ाकर हाथ मुझसे
तुम्हारी ज़ीस्त में क्यूँ अबतरी है

भटकना भी नहीं वश में हमारे
जिधर देखो तुम्हारी रहबरी है

रहबरी = पथ प्रदर्शक, बारहदरी = ऐसा कमरा जिसमें बहुत से दरवाज़े हों, मसरूफ़ = व्यस्तता
बेकैफ़ = आनंद रहित, अबतरी = अव्यवस्थित





●
ये कसक दिल में रह-रह के उठती रही
जिंदगी इस तरह क्यूँ भटकती रही

बन गई गुल कभी और खुशबू कभी
और कभी जिसम बनकर सुलगती रही

एक रिश्ता यही उससे मेरा रहा
मैं चला शहर को वो सिसकती रही

वो दिखायी न देगी, ख़बर थी मगर
क्यूँ नज़र उस दरीचे को तकती रही

ये मेरे इश्क़ की थी गवाही ‘पवन’
उसके हाथों की मेंहदी महकती रही

●

जिंदगी में इक अजब ठहराव सा है
और सोचों में वही भटकाव सा है

कैसी-कैसी आरजूओं के सिले में
जो दिया है तूने इक बहलाव सा है

दूर है साहिल मगर ये भी बहुत है
इस भँवर में साथ उनका नाव सा है

ज़र्रे ज़र्रे से अयाँ है तेरा जल्वा
यह जहाँ सारा तेरा फैलाव सा है

मैं ये बोला इज़्ज़त-ओ-शोहरत है मङ्कसद
वो ये बोला ख़्वाब में बिखराव सा है

अयाँ = जाहिर, साफ दिखाई पड़ने वाला



●
बेबस थे दिन तो सहमी हुई रात क्या कहें
गुज़रे तेरे बगैर जो लम्हात, क्या कहें

हमसे न पूछ यार यहाँ हाल-ए-मुंसिफ़ी
अच्छे नहीं हैं अपने ख़्यालात, क्या कहें

पूछा किसी ने जब कभी फ़ाक़ाकशी का हाल
आँखों ने साफ़ कह दिए हालात, क्या कहें

आग़ाज़-ए-गुफ़तगू़ को ये उम्मीद खा गई
दोनों को इन्तज़ार-ए-पयामात, क्या कहें

बस इस उमीद पर कि हमीं राज खोल दें
वो कितना गुफ़तगू़ में था मोहतात क्या कहें

दो-तीन रोटियों के सवाली थे आठ-दस
सहरा में चार बूँद की बरसात, क्या कहें

बातें कहीं की, ध्यान कहीं और दिल कहीं
वो गैर वाजिबी सी मुलाक़ात, क्या कहें

आमद थी उसकी जैसे कि खुशबू बिखर गई
अल्फ़ाज़, खुशबुओं के पयामात, क्या कहें

फ़ाक़ाकशी = भूखा/निर्धनता, आग़ाज़-ए-गुफ़तगू़=बातचीत का आरंभ, गैर वाजिबी=अनावश्यक

●

“हसरतें दम तोड़ती है यास की आगोश में
सैकड़ों शिकवे मचलते हैं लबे-खामोश में”*

रात तेरे जिस्म की खुशबू से हम लिपटे रहे
सुङ्ह बैरन सी लगी जैसे ही आए होश में

सिलसिले मिलते नहीं उनके कभी तारीख में
उम्र जिसने काट दी हो जिसने सिज्द-ए-पैबोस में

यास = निराशा

* (ये शेर फ़िराक गोरखपुरी साहब का है।)



●

खूबसूरत से कुछ गुनाहों में
उम्र गुज़रे तेरी पनाहों में

ख्वाब गिरते ही टूट जाते हैं
कैसी फिसलन है तेरी राहों में

अब ज़रूरत न हो तख़ातुब की
काश ऐसा असर हो आहों में

शाम चुपचाप आ के बैठ गयी
तेरे जलवे लिये निगाहों में

ऐसी तळदीर ही न थी वरना
हम भी होते किसी की चाहों में

●

तेरी नजरों में तो सहरा हुआ है
मगर दरिया वहाँ ठहरा हुआ है

लगे हैं फिर कुछ अदेशे सताने
लहू का रंग फिर गहरा हुआ है

जहाँ तक देखता हूँ मैं वहाँ तक
हर-इक ज़रा तेरा चेहरा हुआ है

था उस कमज़फ़्र को आखिर छलकना
घड़ा वो कब मियां गहरा हुआ है

हर इक जानिब ज़मां से आस्मां तक
तुम्हारा ही अलम फहरा हुआ है

कमज़फ़्र = ओछा, अलम = ध्वज



●

मंजर भी आज देखिए नादिर हुआ जनाब
सजदे को मैं भी आपके हाज़िर हुआ जनाब

जुगनू सा जल के बुझ गया हासिल हुआ न कुछ
अपना सफ़र तमाम बिलआखिर हुआ जनाब

रुख़सत हुआ जो वस्त का मौसम तो साथ-साथ
जो दर्द गुमशुदा था वो हाज़िर हुआ जनाब

मंजर = दृश्य, नादिर = अद्भुत/अनोखा, सजदा = माथा टेकना/सिर झुकाना, रुख़सत = प्रस्थान/जाना,
वस्त = मिलन

●

यक तरफा फैसला मुझे मंजूर हो गया
मैं उसकी ज़िन्दगी से बहुत दूर हो गया

माँ की इनायतें रहीं ताउम्र इस तरह
मैं तीरगी से जब भी डरा, नूर हो गया

अपने नगर में अपना पता भी नहीं मिला
परदेस में जब आया तो मशहूर हो गया

इज्जत-म-आब होने में कीमत बहुत लगी
मैं खेत-गाँव-चकियों से दूर हो गया

तीरगी = अंधकार, नूर = प्रकाश/उजाला, इज्जत-म-आब = प्रतिष्ठित व चमक-दमक



●

मुंतज़िर सी रात थी, थक हार के अब सो गई
आस जो आने की थी, वीरानियों में खो गई

चॉद से इक बार फिर, क्यूँ हो गया झगड़ा मेरा
इक वही तो दोस्त था, अब दुश्मनी सी हो गई

जुर्म बस इतना सा था, ये दिल किसी पे आ गया
और फिर ये उम्र अपनी इक सजा सी हो गयी

हादसे होते रहे और लब पे शिकवा भी न था
रिस रहे थे ज़ख्म इतने, पीर मरहम हो गई

मुंतज़िर = प्रतीक्षारत

●

रेज़ा रेज़ा ख्वाब हो गये
क़स्मे वादे कहीं खो गये

हर लम्हा इक युग सा बीता
जब से वो परदेस को गये

एक बोझ था जीवन अपना
झुके थे कांधे मगर ढो गये

मैं जागूँ और चाँद भी जागे
तारे नदिया सभी सो गये

कुछ बेढब से हफ्फ लिखे थे
कैसे सब अशआर हो गये

जनम-जनम की बातें छोड़ो
अभी किसी के कहाँ हो गये



●
हमारे शहर में हर अजनबी, इक हमजबां चाहे
मगर कुछ है जो बाशिन्दा यहाँ का दरमियां चाहे

उम्मीदें मंजिलों की अब तो हमको ज़र्द लगती हैं
ख़बर है इस सफर में कारवाँ भी सायबां चाहे

करा दो आशना सच से कि जोखिम है बहुत इसमें
ज़र्मीं क़दमों से ग़ायब है मगर वो आस्मां चाहे

हम उसकी ज़िन्दगी से इस क़दर मानूस हैं या रब
किताबे-ज़िंदगी उसकी हमारी दास्तां चाहे

बहुत बेख़ौफ होकर फूल जो सहरा में उगता था
बदलते वक्त में वो भी खुदा से बागवां चाहे

सायबां = छाया, आशना = परिचित, मानूस = परिचित/हिले-मिले, सहरा = खाली मैदान,
बागवां = माली

●

यूँ भी हम अपनी हर इक रात बसर करते हैं
आपकी याद के साथ में सफ़र करते हैं

एक ही लम्हा गुज़र जाये तेरे साथ कभी
इसी ख़्वाहिश में यहाँ उम्र बसर करते हैं

सूरते संग हैं जो वो भी कभी पिघलेंगे
सुनते आए हैं कि सज्दे भी असर करते हैं

हौसला सहने का अपना है सितम हैं उनके
ग़म की तौहीन है हम उफ़ भी अगर करते हैं

‘याद रखेगा जहाँ’ सिफ़र ख़्याल अच्छा है
वरना कब लोग गये कल पे नज़र करते हैं

सूरते-संग = पथर की तरह



●
पक्ती उम्रों को ये एहसास दिलाने होंगे
नई आँखों में नए ख्वाब सजाने होंगे

खारा पानी है सो आओ इसे मीठा कर लें
अब तो दरिया में समन्दर भी बहाने होंगे

सबकी दुनिया है अलग सबको बिछड़ना है मगर
फूल को शाख़ से रिश्ते तो निभाने होंगे

वक्त मुश्किल हो तो ये सोच के चुप रहता हूँ
कुछ ही लम्हों में ये लम्हे भी पुराने होंगे

देर होती है तो ये सोच के घर जाता हूँ
उसकी आँखों में कई लाख बहाने होंगे

नज़रें







क्या यही वक्त है घर आने का

...और कभी मैं घर को लौटूँ,
तुम दालान के बाहर।
उस छोटी सी मुंडेर पे, जिसपे
हर शाम परिंदे आ-आकर।
कुछ दाने से चुन आते हैं,
वक्ते अस्त्र की आवाज़े।
और तुम गोया खुदनगर
उस दालान की ईटों पर
गालों को कुहनी पे टिकाकर
मेरा रास्ता तकती हो,
मैं धीरे से पीछे आकर
अपनी सख्त हथेलियों से
चुपचाप तुम्हारी आँखों को सहलाऊँगा।
तुम्हारे बुझे-बुझे से चेहरे पर
एक रौनक खेल सी जायेगी
यक व यक तुम्हारी नर्म हथेलियाँ
अपनी सहेली हथेलियों से
कुछ गुफ्तार करेंगी, पर

वक्ते अस्त्र = दिन का चौथा पहर, खुदनगर = खुद में खोया हुआ



अचानक

जैसे कुछ याद तुम्हें आ जायेगा,
मेरी हथेलियाँ छिटका कर
अपनी शादाबी साड़ी का
पल्लू कमर में खोंसोगी,
वो होंठ जो कुछ लम्हे पहले तक
एक-दूसरे से भिंचे-भिंचे थे,
कुछ उदास-उदास
कुछ सटे-सटे थे,
एक बातिल शिकायती लहज़ा
उन सुख्ख लबों पे आयेगा
होंठों को तिरछा सा बनाकर
जुल्फों को शानों पे गिराकर
लरज़ती हुई सी पूछोगी
“क्या यही वक्त है घर आने का”।

शादाब = हरा रंग, बातिल = झूठा, शान = कंधा



फिर भी कितना अनजान हूँ तुमसे

फिर भी कितना अनजान हूँ तुमसे ।
ख्याबों में ख्यालों में
शिकवों में गिलों में
मेंहदी में फूलों में
सावन के झूलों में
झरनों के पानी में
नदियों की रवानी में
तुम ही तुम हो
फिर भी कितना अनजान हूँ तुमसे ।

पतझड़ में सावन में
दिल के किसी आंगन में
झूमती इन हवाओं में
गूंजती इन सदाओं में
खामोशी में बेहोशी में
और तो और सरगोशी में
तुम ही तुम हो
फिर भी कितना अनजान हूँ तुमसे ।



रिश्ते

क्या ख़तो-
किताबत का होगा,
ये रिश्ते हैं, पल दो पल के,
हैं आज अगर ये जिंदा तो,
क्या शर्त है कल तक जीने की ।
ये आसमान का धुंधलापन,
मीलों तक छाई ख़ामोशी,
है भोर का कोई छोर नहीं,
क्या चाह रखूँ अब जीने की ।



अब के बरस

तमाम रात
वे क़तरे
जो गिरते हैं छतों पर
सूरज की चमकती किरनें
जिन्हें सफेद सोना बना देती हैं
उनके ज़ेवर पहन कर देखो ।
वे तमाम ख़्वाब
जो सोते-जागते देखते हैं
या खुदा
सब के सब ताबीर हो जायें ।
तमाम रिश्ते,
जो बेइंतहा खूबसूरत हो सकते थे
मगर वक्त ने
जिन्हें ज़र्द कर दिया ।
तमाम सूरज
जो रोशनी बिखरा सकते थे
मगर कभी धुँध ने उन्हें ज़र्मीं पर आने न दिया,
वे सब चमकें,
ज़र्मीं पर उतरें,



ज़र्रों को चूमें—सहलायें
वाक्हए हादसे सदमों
से धिरी कायनात
फिर से हँसे—मुस्कुराये,
खेतों में पीले हरे
रंग फिर चहकें
हर घर में गेहूँ चावल की गंध महके,
तमाम सियासी खेल जो मंदिर में
अज्ञान नहीं होने देते
और
मस्जिद में दिया नहीं जलने देते
दौर-ए गुज़िश्ता की बात हो जायें
हर ओर खिलें प्यार की फ़सलें
यही उम्मीद अब दिल में रख लें...
अब के बरस
हाँ अब के बरस।



कविता, ग़ज़ल और ऩज़म

तुम्हारी मासूम धुली-धुली सी
आँखों के एक कोने में
इक ख़्याल छुपा सा बैठा है,
लफ़ज़ों के जाल उसे फ़ाँस न लें,
शायद इसलिए
दुबक के बैठा है।
खारे पानी की चादर ओढ़े
ख़्याल की पेशानी पर कुछ बल
लहरों की तरह उठते हैं, गिरते हैं
और उधर लफ़ज़...
...ख़्याल को दबोचने की फ़िराक़ में
होठों पर जाल लिए फिरते हैं
ये छुपने और दबोचने का सिलसिला
यूँ ही चलता रहा है,
चलता रहेगा,
हर इक चेहरा इस मुकाबले को
यूँ ही सहता रहा है,
सहता रहेगा...
...ख़ैर



कब तक छुपा रहेगा
ख्याल इन आँखों के झुरमुट से
निकल ही आएगा बाहर
पलकों के दरीचे को हटाकर कुछ गर्म—खारी
बूँदों में सिमटकर
...तभी
लफ्ज हो जायेंगे होशियार, बाख़बर
तेज़ी से आगे आकर ख्यालात की उंगली में
पहना देंगे एक अंगूठी
लफ्ज में ख्याल
ख्याल में लफ्ज
दीवारें खत्म
जुबां बढ़ आयेगी आगे
बुजुर्ग दरख़त की मानिंद ख्याल को लफ्जों के सतरंगी दुपट्टे का
नज़राना देकर कर देगी उन पर साया।
कुछ देर पहले जो थी एक ख़ामोशी
बन जायेगी एक खूबसूरत बयान
लफ्ज और ख्याल के आपस में गुथने
की एक प्रेम कहानी
शायद इसी का नाम है
ग़ज़ल, कविता और नज़म।



दरिया

अक्सर
हमने देखा है
थमे हुए सैलाबों में,
या रुके हुए तालाबों में
कुछ गंदला सा जम जाता है
ऐसी ही कुछ
आँखों के अन्दर
थमे हुए दरिया में भी हो सकता है
इस दरिया को रोको मत
मुमकिन है
जियादा दिन तक ठहरे रहने से
ये दरिया भी गंदला हो जाये।



जादू

तुम्हारे
जिस्म में
वह कौन सा
जादू लुपा है
कि जब भी तुम्हें
एक नज़र देखता हूँ
तो
मेरी निगाह में
यक-ब-यक
हज़ारों-हज़ार रेशमी गिरहें
सी लग जाती हैं।



ईशी के लिए

अब
दुनिया के मैदान-ए-जंग में
जब आ ही गई हो तुम,
तो
कुछ मसअले
कुछ नसीहतें
कुछ फ़िकरें
कुछ अक़ीदतें
कुछ फ़न
कुछ शरीअतें
अपने बटुए में रख लो ।
ये सारी मुहरें
मैंने
और तुम्हारी माँ ने
वक़्त को ख़र्च करके
ख़रीदी हैं ।



एक लम्हा

सिर्फ इक लम्हा
गुजारा था तेरे साथ कभी
और इक उम्र
भरी पूरी उम्र
कट गई
सिर्फ उसी लम्हे की
यादों के सहारे
ऐ दोस्त
काश !
और इक उम्र
तेरे साथ गुजरने पाती ।



रात

वक्त के मेले में
जब भी रात घूमने निकलती है
न जाने क्यूँ
हर बार
अपने कुछ बेटों को
जिन्हें 'लम्हा' कहते हैं
छोड़ आती है।

ये गुमशुदा लम्हे
हर रात
अपनी माँ की तलाश
में जुगनू की शक्ति
इखिलायार करके
भटकते रहते हैं,
मचलते रहते हैं।



आसमां

आसमां
जहाँ तक देखो
बस एक सा दिखता है
कहीं वो खाने
नहीं हैं इसमें
जिनमें कि ये बँटा हो
कोई लकीर नहीं है
कोई पाला भी नहीं है
कि जिससे साबित हो सके
इधर का हिस्सा हमारा
उधर का तुम्हारा ।
भरी आँखों तक
बस
एक सा दिखता है ।
ये दौरे-खिरद की गुस्ताखियाँ
नहीं तो क्या है,
आसमां में हिस्सेदारी
तय हो रही है
खुदा की अमानत में

ख़्यानत हो रही है।
...वाह रे! सियासतदानो
ये कैसी सियासत है
ये कैसा फ़िक्रो-अमल है।





अमानत

परत-दर-परत
तह-ब-तह
जिन्दगी—जिन्दगी...।
यही इक अमानत
मुझे बख्ती है
मेरे खुदा ने।

इसी में से
ये जिन्दगी
यानी ये उम्र अपनी
तेरे नाम कर दी है मैंने।

मगर सुन ज़रा
यह तो बस पेशागी है,
जो तू हाँ कहे तो
यह सारी अमानत
तेरे नाम
कर दूँ।



यादें

बड़ी
बेशऊर हैं
तुम्हारी यादें
न दस्तक देती हैं
और न ही
आमद का कोई अंदेशा
न कोई इशारा
और न कोई संदेसा
गाहे-ब-गाहे
वक्त-बे-वक्त
दिन-दोपहर
हर वक्त, हर पहर
दिल की दहलीज़
पर हौले से पाँव रखती है,
थम-थम के पैर
उठाती हुई न जाने
कैसे
किस तरफ से
चुपचाप चली आती हैं
और



एक ही पल में
जैसे पूरा साज़ो-सामाँ
बिखरा के
भाग जाती हैं,
बड़ी देर तक
इस बिखरे
असबाब को
मैं
समेटता रहता हूँ
सहेज-सहेज के
महफूज जगहों
पर रखता रहता हूँ
बस यही कहते हुए
बड़ी बेशऊर हैं
तुम्हारी यादें।



नक्श कितने जुदा हैं...

ज़ात
घर
घराना
मुल्क
पैदाइश
माँ
और भी कई फ़ितरतें
इंसानी हों या
खुदाया
एक सी होने के बावजूद
उन दोनों के नक्श
कितने जुदा हैं।
एक ही पहाड़ी दोनों की
माँ है
एक ही मुल्क
इन दोनों की पहचान है,
पैदाइश भी दोनों की
एक सी है,
और भी तमाम पहचानें
एक सी हैं।



नाम भी दोनों के एक से हैं,
...पत्थर !
मगर नक्श दोनों के
कितने जुदा हैं।
एक में धार है
सिर पे मारा जाता है
चोट पहुँचाने के काम आता है,
और एक
...दरियाओं का हम रक्स होकर
गोल हो गया है
सिर से लगाया जाता है
इबादतों के काम आता है।



उसे बदलना ही था

उसे

बेवफ़ा होना ही था,

मुझसे

सिलसिला तोड़ना ही था

कोई रात्मा रखना ही न था,

दो क़दम साथ चलना भी न था

एक रोज़ उसे बदल ही जाना था

और

एक रोज़ मुझे संभल ही जाना था।

वफ़ा की राह में वो

चल न पाएगा, मुझे यक़ीन था,

बाद इसके भी

मगर हरेक लम्हा उसके साथ का

बहुत हसीन था!

ज़रूरी नहीं कि

ज़िंदगी में

हर एक काम

मुनाफ़े के लिए ही किया जाए

सिर्फ़ अपने फ़ायदे के लिए ही जिया जाए।



मैं जानता हूँ कि
उसे न ठहरना था और न वो ठहरा
वो पहले से बादल था मैं पहले से सहरा
मगर
आज भी सोचता हूँ कि
सारी ख़ामियां थीं उसमें,
मगर वो फिर भी मेरा हुआ था
एक पल के ही लिए सही
उसने मेरे दिल की तह को छुआ था
यही तसल्ली है
यही भरम है
वह किसी का न हो सकता था,
न मेरा हुआ
मैं यह सोचता हूँ
मैं शिद्दत से सोचता हूँ
“एक रोज़ उसे बदल ही जाना था
एक रोज़ मुझे संभल ही जाना था ।”



अरबी आयतें और ईशी

दो सौ साठ
रातों के वे तमाम ख़ाब
जिनको हमने सोते-जागते
उठते-बैठते
ख़्यालों में या बेख़्याली में देखा था
आज पूरे सात सौ तीस रोज़ के हो गए हैं
ख़ाबों को बुनना
और बुनने के बाद
उन्हें पहनना
कितना खुशगवार होता है
आज तुम सात सौ तीस रोज़
की हो गयी हो
तुम हंसती हो तो
लगता है
चांद, टुकड़े, टुकड़े होकर
तुम्हारे 'दांतों' में तबदील हो गया है
तुम 'चॉक' से 'स्लेट' पर
जब आड़ी-तिरछी लाइनें खींचती हो
शायद,



अमर्लद
या शायद शेर
या शायद हाथी
या शायद घोड़ा
या ऐसा ही कुछ और
बनाने के लिए
तो बेशक
न वो अमर्लद होता है
न शेर, न घोड़ा और न ही हाथी
पर यह महसूस हो जाता है
ताजमहल की दीवारों पर
लिखी तमाम अरबी आयतों की
तरह
जिन्हें मैं पढ़ नहीं पाता
पर देखने में एक
मुकद्दम सा एहसास पाता हूँ
वही एहसास तुम्हारी
इन बेतरतीब-आड़ी-तिरछी
लाइनों में पाता हूँ।

(बेटी ईशिका के नाम)



मसूरी

मसूरी
एक निहायत
खूबसूरत दोशीज्ञा
जिसके माथे
पर सूरज की लाल
बिन्दी है,
तो तमाम तराशे हुए कुहसार
उसके
अल्हड़पन के गवाह हैं।

मसूरी!
जब सुबह चांदी के वरक़ से
ढके बादलों की
चूनर ओढ़ती है
तो
और भी खूबसूरत हो जाती है
कैम्पटी फॉल के नग्मात
के साथ
शाम...
वाह क्या नक़शबंदी है।



ऐसा लगता है कि
मसूरी ने
अपने ज़ज्बात 'फॉल' के
आब में धोले हैं।
मोती से बिखर जाते हैं
जब बरसात होती है
जी चाहता है
इस मीठी-मासूम
बरसात में
ता उम्र भीगते रहें।

हाशिया

बेसबब
पहले
काग़ज
पे वो
हाशिया खींच देता है
और
उसपे ये दावा
कि वो
बंदिशों में
लिखने का
आदी नहीं है!





ख्वाब

ख्वाब शीशे के टुकड़े हैं
टूटते हैं तो
पलकें लहूलुहान हो जाती हैं
मैं इस डर से कभी
आँखों में ख्वाब
नहीं
सजाता हूँ।



लम्हों की तलाश

वो लम्हा
मेरी मुट्ठी से
रेत की तरह फिसल गया
ऐसा लगा कि मुझसे
कोई 'मैं' कहीं निकल गया।
दूँढ़ता हूँ उसी टुकड़े को
हरेक शख्स के वजूद में
...शायद यह तलाश
ताउम्र
जारी रहेगी।



तुम्हारी तरह

हवा जो
छू के
गुजरती है
मुझे
उसमें खुशबू बसी है
तुम्हारी तरह।
ये नदिया जो बहती है
इसमें
इक सादगी है
तुम्हारी तरह।
रंग धानी है हरसू
बिखरा हुआ
इस ज़र्मां का है
ये
पैरहन है
तुम्हारी तरह।
बे मक्कसद हैं
राहें यहाँ की सभी
मगर

चलती जातीं
हैं
तुम्हारी तरह।
दिन को लोरी सुना के
सुलाते हुए
रात जाग जाती है बस
तुम्हारी तरह।
और भी बहुत कुछ है
तुम्हारी तरह
किसी ने तो खींचे हैं
तुम्हारे ही नक्श
इन
फिज़ाओं में।





दर्द कौन समझेगा

तूने बख्शा तो है
मुझे
खुला आसमां
साथ ही दी हैं
तेज़ हवाएं भी
हाथों से हल्की जुम्बिश
देकर जमीं से ऊपर उठा
भी दिया है।

मगर
ये सब कुछ बेमतलब
सा लगता है,
ये आस्मां, ये हवाएं, ये
हल्की सी जुम्बिश।

काश!
तूने ये कुछ न दिया होता
बस मेरी कमान खोल दी
होती,

एक धागा है कि
जिसने बदल दिए हैं

मेरी आज्ञादी के मायने,
डोर से बंधी पतंग का
दर्द कौन समझेगा ।

(महिला दिवस पर दुनिया की आधी आबादी के नाम)





तहरीं

एक
वादा
तुमसे रोज़
कुछ लिखने का
तुम्हारे बारे में,
अभी भी मुस्तैदी से
निभा रहा हूँ।
मगर
इस बार
तहरीं कागजों पर नहीं
दिल के सफ़हों पे
लिख रहा हूँ
...पढ़ सकोगी तुम?



समन्दर

एक
मुकम्मल किनारे
की तलाश में
हर रोज
कितने किनारे
बदलता है समन्दर
तमाम
नदियों को
ज़ज्ब करने के बाद भी
मासूम सा
दिखता है समन्दर।
शाम होते ही
सूरज को
अपनी मुट्ठी में
छुपाकर
सबको
परेशान करता है
समन्दर।
...बड़ा सफेद पोश है
ये समन्दर।

(पुरी के समन्दर से)



खत

जाने
क्या सोच के
तेरे खत
कल
नदी में
बहाये थे—

खत तो
काग़ज़ के थे
गल गए
बह गए

मगर
वो सारे हफ्फ जो
उन पर तूने
लिखे थे
वो सब
अब तक
दरिया में
तैर रहे हैं।



वक्त पर...

वक्त पर
थम गई है
बारिश
जो गुज़री रात
को
हुई थी,
धो दिए हैं
रास्ते इस बारिश ने।
सूरज भी
खूब वक्त से
निकला है,
किरणें
बिखरा दी हैं
हरसू फ़िज़ाओं में।
संदली
खुशबू
भी बिखर गई है हवाओं में।
देर तक
शाखों के बिस्तर पर



सोते रहने वाले
रंग-बिरंगे
फूल भी
वक्त से जाग गए हैं।
न जाने कैसे
इन सबको
ख़बर हो गई है
तुम्हारी
आमद की,
सब कुछ वक्त
पर चल रहा है...
इक इल्लिजा
है मेरी
अब तुम भी तो
आ जाओ
वक्त पे।...

ਕਤਅ







•
मैं खुद को जानता था समन्दर तुम्हें नदी
लेकिन मिला हूँ तुमसे तो शीरीं मिज्जाज हूँ

•
मैं बहुत हैरत में हूँ वो किस तरह बचकर गया,
जिसकी जानिब शहर में हर हाथ का पत्थर गया।

•
फूल सा खिलता है दिल खिल के बिखर जाता है
कोई एहसास मुझे छू के गुज़र जाता है

•
ये बदल है तो नहीं लम्स का तेरे लेकिन
तुझको सोचूं तो मेरे ज़हन से खुशबू आए

•
कोई ख़त भेजने का सिलसिला नायाब रखता है
हवाओं पर तुम्हारा खुशबूओं से नाम लिखता है

•
दरिया बादल आपके हिस्से सूरज अपनी क़िस्मत है
रेत का ज़रा होने में अब हमको शर्म नहीं आती

•
कभी इक मोजिज्जा ये भी हमारे बीच मुमकिन है
अधूरे ख़्वाब मेरे हों तिरी आँखों से वाबस्ता



•
दरिया में झूबना ही हर हाल में है बेहतर
साहिल पे क्या मिलेगा बस रेत के ख़जाने

•
एक अनदेखा परिन्दा मन की बातें पढ़ गया
जाल डालें उसको पकड़ें इससे पहले उड़ गया

•
वही रुदाद है सबकी वही हैं सबकी तहरीरें
न इन राहों में अब तक मील का पथर मिला कोई

•
तन्हा न जान हमको कि साये के वास्ते
अब भी हमारे सहन में बूढ़ा दरख़्त है



आभार

जनाब शीन काफ़ निज़ाम

जनाब मोहम्मद अलवी

प्रो. वसीम बरेलवी

श्री शशि शेखर

जनाब अक्रील नोमानी

श्री हरीशचन्द्र शर्मा जी

श्री अतुल माहेश्वरी

डॉ. लाल रत्नाकर

श्री कमलेश भट्ट 'कमल'

श्री विनय कृष्ण 'तुफैल' चतुर्वेदी

...और आप सभी का!

